श्रीः

द्वैतभूषणम्

(वेदान्त ग्रन्थः)

ग्रन्थकार

श्री १००८ श्रीमद्रामसखेन्द्र निध्याचार्य जी महाराज

सम्पादक तथा प्रकाशक

षट श्री महान्त प्रमोदवन बिहारीशरण जी

व्याकरण शास्त्री, साहित्य भूषण

श्री मद्राम सखेन्द्र संस्कृत विद्यालय

स्थान–मैहर, सतना (म० प्र०)

ग्रन्थकार

श्री १००८ श्रीमद्राम सखेन्द्र

निम्बयाचार्य जी महाराज

आविर्भाव काल–चैत्र शुक्ल ६ सं० १७५६

परमपद काल–आश्विन शुक्ल ७ सं० १८४२

॥ श्रीः ॥

❀ श्रीमन्नृत्य राघवाय नमः ❀

श्रीसीतारामाभ्यां नमः

श्रीमद्राम सखेन्द्र निध्याचार्य विरचितम्

द्वैतभूषणम्

[वेदान्त ग्रन्थः]

[मंगलाचरणम्]

रामं नवघनश्यामं वामं वामाङ्गजानकिम् ।
नत्वा रामसखेनेदं तन्यते द्वैतभूषणम् ॥ १ ॥

भाषा टीका :—

अवतरणिका :—द्वैतभूषण नामक वेदान्त ग्रन्थ का आरम्भ करते हुए-ग्रन्थकार श्री रामसखेन्द्र निधि अविवार्यवर्य निर्विघ्नता पूर्वक ग्रन्थ समाप्ति के लिये तथा शिष्य शिक्षार्थ मङ्गलाचरण करते हैं।

जिनके वाम भाग में वामाङ्गभूता श्री जानकी जी शोभायमान हो रहीं हैं, तथा जो नवीन मेघ की तरह श्यामवर्ण हैं, ऐसे श्री रामजी को नमस्कार करके श्री राम सखेन्द्र निधि आचार्य नामक मेरे द्वारा द्वैतभूषण वेदान्त ग्रन्थ का विस्तार किया जाता है।

तत्रात्मद्वैतत्व प्रतिपादकत्वमखिलोपासकजनोपकारकतया, ईश्वर तत्त्वावबोधकत्वम् ।

आत्मा का द्वैतभाव प्रतिपादन इसलिये किया जाता है, कि इससे समस्त उपासक जनों का उपकार होगा और ईश्वर तत्व का बोध होगा। तात्पर्य यह है कि उपासना उपास्य—उपासक भाव से ही होती है (मैं उपासक हूँ और ईश्वर उपास्य हैं इसी भाव से उपासना होती है) अतः उपास्य ईश्वर से उपासक जीवात्मा पृथक तत्व है, इसलिये उपासना में द्वैत की ही मान्यता है अद्वैत की मान्यता नहीं है।

तल्लक्षणं तु—यावदज्ञानाधिकरणत्वावच्छिन्नैक परमात्मनो यत्किञ्चिद्ज्ञानविशिष्टानेकजीवात्मनोऽखिलत्वव्यवहारत्वम् ।

उसका लक्षण इस प्रकार है कि निखिल ज्ञानों का अधिकरण जो एक परमात्मा, और यत्किञ्चित ज्ञान वाले जो अनेक जीवात्मा, इन दोनों में अखिल आत्मत्व का व्यवहार होता है। अर्थात् आत्मा शब्द से परमात्मा और जीवात्मा दोनों का ही समान रूप से व्यवहार होता है आत्मत्वेन दोनों समान रूप हैं।

न चात्मनः साम्यत्वे सख्यत्वव्यवहारः न सम्भवतीति वाच्यम्-व्याप्यव्यापक सम्बन्धस्यान्योन्याश्रयत्वात् जीवात्मेत्यात्मत्वप्रसिद्धेश्च ।

यदि जीवात्मा का परमात्मा से साम्य कहा जाय तो सख्यत्व का व्यवहार कैसे होगा ? यह नहीं कहना चाहिये, क्योंकि व्याप्य व्यापकता सम्बन्ध अन्योन्याश्रित (परस्परापेक्षी) होता है, अर्थात

व्याप्य के बिना व्यापक की सिद्धि नहीं होती, और व्यापक के बिना व्याप्य की सिद्धि नहीं होती है। क्योंकि व्याप्य व्यापक सम्बन्ध एक दूसरे के आश्रित होता है, और जीवात्मा की आत्मतया प्रसिद्धि भी है, अतः साम्य होने पर भी जीवात्मा परमात्मा का सखा है, ऐसा माननें में कोई अनुपपत्ति नहीं होती है।

यत्तु अज्ञानजन्योपाधिजन्यजीवत्वव्यवहारस्य स्थापितत्वम्, तत्तु भ्रममात्रमेव।

और जो कहते हैं कि अज्ञान रूप उपाधि से जायमान ही जीव है जब तक उपाधि है तब तक जीव है, अज्ञान रूप उपाधि नाश होने पर जीव नहीं रहेगा। जैसे—रज्जु में सर्प तभी तक है जब तक रज्जु का ज्ञान नहीं, अधिष्ठान रूप रज्जु का ज्ञान होते ही सर्प का नाश [अभाव] हो जाता है, अतः उपाधि से भिन्न जीव नाम का कोई पदार्थ नही है, अज्ञान रूप उपाधि से जायमान पदार्थ ही जीव है, ऐसा व्यवहार स्थापित किया है। कोई भिन्न वस्तु जीव नहीं है, ऐसा जो कहा गया है, वह भ्रम मात्र है, क्योंकि अधिष्ठान में सत् पदार्थ का ही अध्यास होता है। असत् पदार्थ का अध्यास होता ही नहीं, रज्जु रूप अधिष्ठान में देशान्तर कालान्तर में सत्य सर्प का अध्यास होता है जैसे देशान्तर में और कालान्तर में सर्प सत्य है, वैसे ही जीव भी सत्य है।

यत्तु जीवस्यानित्यत्वं केचिद् वदन्तीति तन्न।— जीवस्यानुचरत्वाभावे परमात्मन ईश्वरत्वभङ्गत्वस्य प्रसङ्गात्।

और जो कोई जीव को अनित्य कहते हैं, सो ठीक नहीं है, क्योंकि जीव यदि ईश्वर का अनुचर नहीं रहेगा, तो परमात्मा की ईश्वरता के भंग का प्रसंग आ जायगा। क्योंकि जीव जब अनित्य है, तो जिस समय जीव नहीं रहेगा उस समय परमात्मा में ईश्वरता ही नहीं रह जायगी। क्योंकि उस समय, परमात्मा किसका ईशन करेगा, अतः जीव अनित्य नहीं किन्तु नित्य है तभी परमात्मा में ईश्वरता भी नित्य है।

अतएवानीश्वरत्वं चार्वाकादयो वदन्ति न तथेश्वर-वादिनः ।

अतएव जैसे अनीश्वरता चार्वाक आदि कहते हैं वैसे ईश्वर वादी नहीं कहते हैं। अर्थात् चार्वाकमतावलम्बी ईश्वर को मानते ही नहीं। उनका मत है कि ईश्वर नाम का कोई पृथक पदार्थ ही नहीं है, शरीर ही आत्मा है, वही ईशन करता है।

किञ्च यत् 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' इत्यादि श्रुत्युक्त-मेकत्वं ब्रह्मणः प्रतिपाद्यते तत्तु सत्यमेव । ब्रह्म इति परमात्मन एव नाम, न तु तद्भिन्नस्य जीवात्मनस्तस्यैव सखत्वव्यवहारवत्वात् ।

किञ्च, "एक ही अद्वितीय ब्रह्म है" इस श्रुतिसे जो ब्रह्म का एकत्व प्रतिपादन किया जाता है यह बात तो सत्य ही है, क्योंकि "ब्रह्म" यह नाम परमात्मा का ही है। ब्रह्म से भिन्न जीवात्मा का नही है। जीवात्मा को तो परमात्मा का सखा करके व्यवहार किया गया है।

अन्यच्च 'व्याप्नोतीति ब्रह्म' इति व्युत्पत्त्या ब्रह्म पदार्थो व्याप्यजीवान् विना कथं संगच्छते। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इति श्रुतेः, 'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव' इति स्मृतेश्च।

और भी सुनिये 'व्यापन करने वाले को ब्रह्म कहते हैं' इस व्युत्पत्ति से ब्रह्म पदार्थ, व्याप्य जीवों के बिना कैसे सार्थक होगा। यही अर्थ—'यह सब ब्रह्म ही है, इस श्रुति से और 'हम ब्रह्म में यह समस्त जगत् इस प्रकार से ओत प्रोत हैं, जैसे सूत्र (डोरा) में मणि गण ओत प्रोत रहते हैं' इस स्मृति से भी उक्त व्युत्पत्ति सिद्ध होती है।

ननु ब्रह्मैवाऽज्ञानजन्योपाधिवशतो जीव इति संज्ञान्तरं लब्धवदिति चेन्न, जीवस्यानेक–भोगायतन संबन्धि काणत्वान्धत्व-वधिरत्व-मूकत्व-पंगुत्व-कुष्ठादि-भंगत्वादिजनितदुःखाद्यनुभवात्। देहान्तरेऽपि निषिद्ध-कर्मवशतो रौरवादियातनाश्रवणाच्च।

यदि कहा जाय कि ब्रह्म ने ही अज्ञान जन्म उपाधि से "जीव" इस दूसरे नाम को प्राप्त कर लिया है। अर्थात् जीव नाम का कोई भिन्न पदार्थ नही है, तो ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि जीव के ही अनेक योगायतन (शरीर) के सम्बन्धि कारणों से अन्धत्व बहिरापन, मूकता पंगु कुष्ठ आदि से शरीर भंग हो जाने से जो दुःखादि होते हैं, उन दुःखों का अनुभव जीव को ही होता है। और निषिद्ध कर्मों के आचरण से देहान्त (मरने के बाद) में रौरव आदि नरकों की यातना होती है। ऐसा शास्त्रों

से सुना जाता है। अतः ब्रह्म से भिन्न जीव पदार्थ भी सत्य हैं, ऐसा सिद्ध होता है।

ब्रह्म तु 'प्रत्यगस्थूलमचक्ष्वप्राण ममनोऽकर्तृ चैतन्यश्चिन्मात्रम्, सदित्यादि प्रवलश्रुतिप्रतिपादनत्व सम्भवात्।

ब्रह्म तो—प्रत्यक, अस्थूल, अचक्षु, अमन, अकर्ता, चैतन्य, चिन्मात्र; प्रतिपादन किया गया है। अर्थात् यत्तद द्रेश्यमग्राह्य मगोत्र मवर्ण मचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम् -- दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स वाह्याभ्यन्तरोह्यजः।

अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः···इत्यादि श्रुतियों से उपर्युक्त ब्रह्म के स्वरूप का निषेधविधया वर्णन करके 'सन्मूलाः सौम्येमाः प्रजाः इत्यादि प्रवल श्रुतियों से ब्रह्म का सत्स्वरूप प्रतिपादन किया गया है।

यत्तु केचन मन्दमतयो ब्रह्मणः प्रतिविम्बमेव जीवः, इति प्रतिपादयन्ति, तन्मन्दम् मन्दतरम्, यतोऽस्य प्रतिविम्बस्य सुखाद्यनुपलब्धित्वम्, जीवस्य तु नानाशरीराश्रित-कर्मोद्भूत सुखदुःखाद्युपलब्धेः।

जो कोई मन्दमति ब्रह्म के प्रतिविम्ब को ही जीव कहते हैं, यह उनका कहना मन्द और मन्दतर है। क्योंकि प्रतिविम्ब (परछाई) को सुख दुःख आदि की उपलब्धि (अनुभूति) नहीं होती। जीव को तो नाना प्रकार के शरीरों के सम्बन्ध से किये गये जो कर्म उन कर्मों से उत्पन्न जो सुख और दुःखों की उपलब्धि (अनुभव) होती है। तात्पर्य यह है कि यदि ब्रह्म का प्रतिविम्ब ही जीव है, तो लोक में छाया को सुख, दुःख, हर्ष, शोक

आदि होना चाहिए ऐसा नहीं होते हैं। हमारी छाया अगाध जल में पड़ती है, तो उसको जल में डूबने का दुःख नहीं होता।

जीव को तो सुख दुःख आदि का अनुभव होता है, इसलिए ब्रह्म का प्रतिविम्ब जीव नही है, किन्तु ब्रह्म से भिन्न जीव तत्व सत्य और त्रिकालाबाध्य नित्य है।

किञ्च, तेषां मते ब्रह्मणो निरवयतत्वं सर्वदेशीयत्व च स्वीक्रियते अतः सुतरां ब्रह्मणः प्रतिविम्बाभावः, यतोऽस्य निरवयवत्वात् सर्वदेशीयत्वाच्च। प्रतिविम्बस्तु -सावयवानामेकदेशीयानामेव सम्भवति। यथा—सावयवा एकदेशीयाव सूर्यचन्द्रादय। तेषामेव सजल-कलशादौ प्रतिविम्बो भवति।

किञ्च, प्रतिविम्बवादियों के मत में ब्रह्म को निरवयव और सर्वदेशीय स्वीकार किया गया है, इसलिये और भी ब्रह्म के प्रतिविम्व का आभाव सिद्ध होगा। क्योंकि ब्रह्म के निरवयव और सर्वदेशीय होने से अर्थात निरवयव का प्रतिविम्व नहीं होता तथा सर्व देशीय (व्यापक) का भी प्रतिविम्व नहीं होता, प्रत्युत प्रतिविम्व सावयव और एक देशीय का ही होता है। जैसे सावयव और एक देशीय सूर्य चन्द्रमा आदि के प्रतिविम्ब सजलघट आदि में देखने में आते हैं।

ननु निरवयवस्याकाशस्य प्रतिविम्बः कथ्यतेअतो नियमाभावान्निरवयवस्याऽपि ब्रह्मणः प्रतिविम्बः स्यादिति चेन्न, आकाशस्योत्पत्तिमत्त्वेन सावयवत्वात् प्रतिविम्बः। वस्तुतस्त्वाकाशस्य नीलरूपाश्रयत्वात्।

यथाच श्रुतिः—तस्माद् वा एतस्मादात्मनआकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। इत्यत्रोत्पत्तिश्रवणाच्च।

यदि कहा जाय कि आकाश निरवयव है, उसका प्रतिविम्ब तो कहा जाता है ? वैसे ही निरवयव ब्रह्म का भी प्रतिविम्ब होगा वही जीव कहा जायगा ? सो नहीं कह सकते—क्योंकि दृष्टान्त दार्ष्टान्त में साम्यता नहीं है। आकाश उत्पद्यमान होने से सावयव ही माना जायगा। क्योंकि उत्पद्यमान सभी पदार्थ सावयव होते हैं, और ब्रह्म उत्पद्यमान नहीं है। अतः निरवयव है उसका प्रतिविम्ब नहीं पड़ेगा। वस्तुतः आकाश नील रूप का आश्रय होने से ही उसका प्रतिविम्ब भाषित होता है। श्रुति भगवती आकाश की उत्पत्ति को स्वीकार करती है। 'इस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथिवी उत्पन्न हुई' इस श्रुति में आकाश की उत्पत्ति श्रवण होती है।

अतः सावयवानामेव प्रतिविम्वः, नतु निरवयवानामिति सिद्धम्।

अतः सावयवों का ही प्रतिविम्व होता है, निरवयवों का नहीं होता, यह सिद्ध हुआ।

अपिच यत् ब्रह्मणो निर्विशेषत्वे प्रमाणभूतानि श्रुतिवाक्यानि सन्ति इति तत्तु वदतो व्याघातः, यतो यस्येश्वरस्य श्वासवायोर्वेदास्तस्य चेन्मुखनासिकाद्यङ्गानि नस्युस्तर्हि वेदानामुच्छेदापत्तिः प्रसज्येत। यतो मुखाद्यभावे श्वासप्रश्वासाद्यभावोऽर्थतः स्पष्ट एव। एवञ्च तेषां श्रुति प्रामाण्यमप्यप्रमाणं स्यात्।

और भी देखिये यदि वादी कहे कि ब्रह्म के निर्विशेष मानने में प्रमाणीभूत श्रुति के वचन मिलते हैं, जिनसे ब्रह्म निर्विशेष सिद्ध होगा ? सो नहीं कह सकते, क्योंकि वदतो व्याघात है। जिस ईश्वर के निःश्वासभूत वायु से वेद हैं, उस ब्रह्म के यदि-मुख नासिका आदि अंग नहीं होंगे तो वेदों की उच्छेदापत्ति ही हो जायगी। क्योंकि मुखादि अंगों के अभाव में श्वास प्रश्वास का ही अभाव होगा, फिर उस श्वास प्रश्वास के अभाव में वेद कहां से होंगे ? यह स्पष्ट ही है, फिर तो उनका श्रुतियों का प्रमाण देना ही अप्रमाण हो जायगा।

नन्वेवञ्च ब्रह्मणो निरवयवत्वं निर्विशेषत्वञ्च श्रीमद्भिरेव मुक्तकण्ठेनोद्घाटितम्, किमस्माकं दूषणमिति चेत्सत्यम्। निरवयवत्वं ब्रह्मणः, एव नत्वीश्वरस्य" यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत् प्रयन्त्यभि सम्विशन्ति," इत्यादि श्रुतेः 'यतः सर्वाणि भूतानि प्रभवन्त्यहरागमे। यास्मिञ्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥, इत्यादि स्मृतेश्च। इति श्रुति स्मृति प्रमाणवलेन सयुक्तिकोपपादानेन च सावयवा देवेश्वरात् सावयवानामुत्पत्तिर्नतु निरवयवात्सावयवानामिति। यथा—गोधूम्राद् गोधूमं चणकाच्चणकन्चोत्पद्यते।

यदि निर्विशेष वादी यह कहैं, कि आप भी तो ब्रह्म को निरवयव और निर्विशेष मुक्त कण्ठ से उद्घाटित करते है, फिर

हमारा ही क्या दूषण है? तो यह कहना सत्य है, परन्तु हम ब्रह्म को ही निरवयव मानते हैं, ईश्वर को निरवयव नहीं मानते। क्योंकि 'जिस ईश्वर से ये सब भूत उत्पन्न होते हैं, और उत्पन्न हुए उसी ईश्वर से जीवित (पालित, पोषित) होते हैं तथा प्रलयकाल में उसी ईश्वर में प्रवेश भी कर जाते हैं' इस श्रुति से और 'जिस ईश्वर से दिन के आगमन में सबभूत प्रादुर्भूत (उत्पन्न) हो जाते हैं और युग के क्षय (प्रलय) में पुनः उसी ईश्वर में प्रलीन हो जाते हैं, इस स्मृति से भी उपरोक्त-प्रमाणित होता है। अतः श्रुति और स्मृति के प्रमाण के बल से तथा सयुक्तिक उपादान से सावयव ईश्वर से ही सावयव पदार्थों की उत्पत्ति होनो सिद्ध है। निरवयव ब्रह्म से सावयव पदार्थों की उत्पत्ति नही सिद्ध हो सकती जैसे गेहूं से गेहूं चना से चना उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार सावयव ईश्वर से ही सावयव जगत उत्पन्न हुआ है निरवयव ब्रह्म से नही यह सिद्धान्त हुआ।

किं तर्हि ब्रह्मण ईश्वरत्वं किन्चिदन्यद् वस्त्वस्ति, इति चेत्तत्राह—नारायणाद्यवतार विशिष्ट श्रीरामकृष्णादीनान्तु यत्तेजस्तद्ब्रह्मणः पृथक् वरीवर्ति। यथा—सूर्यस्य घर्मश्चन्द्रस्य चन्दिका।

वादी कहता हैं कि-तो क्या ब्रह्मकी ईश्वरता कोई ब्रह्म से अन्य वस्तु है? सिद्धान्ती उत्तर देता है कि सुनो-नारायणादि रूप से अवतरित होने वाले श्री राम जी श्री कृष्ण जी आदि का जो तेज है, वह ब्रह्म के तेज से भिन्न है। जैसे—सूर्य का तेज घाम कहाता है, और चन्द्रमा का तेज चाँदनी कहाती है।

यद्येवं तर्हि सावयवस्यैवेश्वरस्य प्रतिबिम्बो जीवः इति केनवार्यते। मैवं प्रतिबिम्बस्य जडत्वात् कर्तृत्व, वक्तृत्व श्रोतृत्वादि धर्माः केऽपिन सम्भवन्ति। जीवस्यतु कर्तृत्व गन्तृत्व श्रोतृत्वादि धर्माः सर्वे सम्भवन्ति।

वादी कहता है कि यदि ऐसा है तो सावयव ईश्वर का ही प्रतिविम्व जीव है, इसको कौन वारण कर सकता है ? सिद्धान्ती कहता है-ऐसा मत कहो क्योंकि प्रतिविम्व के तो जड होने से उसमें कर्तापन, वक्तापन, श्रोतापन आदि धर्म कोई भी नही हो सकते हैं। परन्तु जीव के तो कर्तापन, यानापन, श्रोतापन आदि सभी धर्म प्रतिपादन किये गये हैं।

अतः ईश्वर का प्रतिविम्व जीव नहीं हो सकता, किन्तु जीव ईश्वर से भिन्न पदार्थ ही है।

अत एव कश्चिन्मुकुरपटले मुख प्रतिबिम्ब मवलोक्य तं प्रति किन्चिद्वदति चेत्तर्हि वक्तुर्विक्षिप्तत्वं समायाति। विक्षिप्तस्यतु शुद्धं वाक्य मपि केऽपि न मन्यन्ते।

अतएव कोई शीशा में अपने मुख के प्रतिविम्व को देखकर यदि उस प्रतिविम्व से कुछ कहता है तो उस वक्ता का पागलपना ही सिद्ध होता है। पागल के तो शुद्ध वाक्य को भी कोई नही मानता।

तस्मादीश्वरस्य प्रतिबिम्बो जीव इति कदाऽपि न वक्तुं शक्यः। श्रीमद्रामो भगवानीश्वरो लक्ष्मण हनुम-

दादीन् प्रति तत्व ज्ञानम् समुपदिष्टवान् । श्री कृष्णावतारेऽपि भगवान् श्रीकृष्णोऽर्जुनोद्धवादीन् प्रतिज्ञानं समुपदिष्टवान् वेदाश्च तदीश्वरस्य श्वास प्रश्वास वायव एव ।

अत ईश्वरेऽज्ञानत्व कल्पना कथं स्यात् । वेदान्त गीतोपनिषत्स्मृतो त्यादीनान्चप्रमाणोल्लंघने रौरवादि-नरकपातः सम्भवतोति शास्त्रेषु प्रसिद्धम् ।

इसलिए ईश्वर का प्रतिविम्व जीव है ऐसा कभी नहीं कहना चाहिये । क्योंकि श्रीमान् भगवान् श्री राम जी ने श्री लक्ष्मण, श्री हनुमान जी आदि को तत्व ज्ञान का उपदेश किया है । एवं श्रीकृष्णावतार में श्रीकृष्ण जी ने भी अर्जुन उद्धव आदिकों को ज्ञान का उपदेश किया है । चारो वेद उसो ईश्वर के श्वास प्रश्वास रूप वायु ही हैं । अतः ईश्वर में अज्ञान की कल्पना कैसे हो सकती है । यदि वेदान्त, गीता, उपनिषद्, स्मृति आदिकों के प्रमाणों का उल्लंघन किया जायगा तो रौरवादि नरकों में गिरना होगा, यह बात सब शास्त्रो में प्रसिद्ध है ।

नन्वीश्वरस्य किमीश्वरत्वं यत् मत्स्य, कूर्मादि तिर्यंग् नीच योनिष्वप्यवतार इतिचेन्न । तत्राऽपिनोच तिर्यग्योनिष्वपि प्रच्छन्नतया स्थितस्येश्वरत्वं ज्ञात्वाऽशेष वेदै रसंख्य स्तुति भिःस्तोष्टूयमानत्वात् ।

यदि कहैं कि ईश्वर में ईश्वरता क्या है—जो मत्स्य, कूर्म आदि तिर्यक् नीच योनियों में अवतार लिया जो अति निन्द्य है,

सो नहीं कहना चाहिये, क्योंकि उन नीच योनियों में भी छिपी हुई ईश्वर को ईश्वरता को जानकर अशेष (सम्पूर्ण) वेदों से असंख्य स्तुतियों से मत्स्य कूर्म आदि अवतारों की स्तुतियां की गई हैं।

अतः वहाँ भी ईश्वर में ईश्वरता विद्यमान है, उसका अभाव नहीं है।

नन्वेषां प्राकृतानां मत्स्यादीनां सज्जनाः स्पर्शमपि न कुर्वन्ति किमुत समादरण मिति चेन्न। प्राकृत मत्स्यादीनां व्यवहारस्य निन्दितत्वात् सज्जनैरस्पर्शत्वं नत्वीश्वरावतारभूतानां मत्स्य कूर्मादीनाम्।

जिन प्राकृत कूर्म आदिकों का सज्जन स्पर्श भी नहीं करते उनका समादर कैसे करेंगे, ऐसा न कहो ? क्योंकि प्राकृत मत्स्य कूम आदि का व्यवहार निन्द्य होने से सज्जन उन प्राकृत मत्स्य आदिकों का स्पर्श नहीं करते, किन्तु ईश्वर के अवतारभूत मत्स्य कूर्म आदिकों का तो समादर ही करते हैं, क्योंकि उनमें ईश्वरता उस दशा में भी विद्यमान है।

किंचेश्वराधीनतया वन्माया वशतयाच जीवस्यतु तत्तत्कर्मजन्य तत्तच्छुभाशुभफलानुभवो भवति।

जीव ईश्वर के अधीन है और ईश्वर की माया के आधीन होने से माया परवस होकर जीव नें जो शुभ अशुभ कर्म किये हैं, उन शुभ अशुभ कर्मों के फलों का अनुभव जीव को होता ही है।

ननु यदीश्वरेणसाकं जीवस्य सख्यं स्यात्तर्हि तस्येदृशं दुःखानुभवं कर्तुमनुचित मिति चेत्सत्यम्। यस्य जीवस्येश्वर स्मरण मपिनास्ति, कोऽहं, कोवेश्वर इति ज्ञानमपि नास्ति, तस्य जीवस्यानेक दुष्ट योनिषु भ्रमणं भवति। नहि यत्र कुत्राऽपि योनावीश्वरस्य स्मरणादिकं कर्तुं जीवः समर्थोभवति किन्तु मनुष्ययोनावेन।

वादी शंका करता है कि यदि ईश्वर के साथ जीव की सख्यता है, तो जीव को इस तरह के दुःखों का अनुभव होना अनुचित है। समाधान करते हैं—कि यह आपका कहना सत्य है किन्तु जिस जीव को ईश्वर का स्मरण ही नहीं है, और यह भी ज्ञान नहीं है कि मैं कौन हूँ ? ईश्वर कौन है ? उसी जीव को अनेक दुष्ट योनियों में भ्रमण करना होता है और अपने स्वरूप सम्बन्ध प्रच्युति के कारण मायावश अनेक दुःखों को भोगता है। जिस किसी भी योनि में जीव ईश्वर का स्मरण नहीं कर सकता, किन्तु वह तो भगवत्कृपालभ्य मनुष्य योनि में ही सम्भव है, क्योंकि मनुष्य योनि में स्मरण के सब उपकरण उपलब्ध रहते हैं।

कर्मजाल विमुक्तः शुद्धस्वरूपो जीवस्तु शुद्ध सख्य व्यवहारतया सर्वदैवेश्वरसमीपस्थः सन्नीश्वर वद्भाति। तस्मादीश्वरस्य सखैव जीव इति सिद्धान्तः।

कर्म जाल से विमुक्त शुद्ध स्वरूप जीव के ही साथ सख्यत्व व्यवहार होने से शुद्ध स्वरूप जीवात्मा तो सर्वदा ईश्वर के समीप

मे ही रहता है, और ईश्वर की तरह सदा भाषित होता रहता है। इसलिये जीव ईश्वर का सखा ही है, यह दृढ सिद्धान्त है।

तत्राप्यादावीश्वरो जीवोवेति वितर्के वटवीजन्यायो दर्शनीयः। इत्यलं पल्लवितेन सर्वं रमणीयम्

इन दोनों जीव ईश्वर में आदि कौन है ? अर्थात् जीव आदि है ? या ईश्वर आदि है ? यह तर्क होने पर "वटवीज न्याय" देखना चाहिये। तात्पर्य यह है कि पहले वट वृक्ष है ? या पहले वट का बीज है ? यह तर्क होने पर दोनों ही अनादि माने जाते हैं, पौर्वापर्य (कौन प्रथम हुआ ? कौन बाद में हुआ) नहीं खोजा जाता। उसी प्रकार ईश्वर जीव में भी समझना चाहिये। क्यों कि ये दोनों अनादि तत्व हैं, विशेष विस्तार की कोई आवश्यकता नहीं है, सब सुन्दर ही है।

अन्त में ग्रन्थकार ग्रन्थ के समाप्ति के समय का निर्देश करते हैं—

चन्द्राग्न्यष्टेन्दु संख्येऽब्दे
श्रावणे शुक्ल पक्षके
नवम्या मिन्दुवारे च
समाप्तं द्वैतभूषणम् ॥

इति श्रीमद्रामोपासनाचार्यवर्य श्रीमद्राम सखेन्द्र निध्याचार्य विरचितम् द्वैतभूषणंसमाप्तम्।

शुभं भूयात्

चन्द्र १ अग्नि ३ अष्ट ८ इन्दु १ संख्यक वैक्रम सम्वत्सर में अर्थात् "अंकानां वामतोगतिः" के सिद्धान्त से सम्वत्सर

१८३१ के श्रावण शुक्लपक्ष की नवमी तिथि सोमवार को द्वैत-भूषण ग्रन्थ समाप्त हुआ।

इस प्रकार श्रीमान् श्रीरामोपासना आचार्य वर्य श्री राम-सखेन्द्र निधि आचार्य के द्वारा विरचित द्वैतभूषणग्रन्थ समाप्त हुआ।

❀ श्री गुरु स्तुतिः ❀

बसन्त तिलक छन्दः

ध्याये सदा तव गुरो चरणाम्बुजं मे ।
ध्याता सदा रघु कुलोद्भव पाद पद्मम् ॥
शिष्योपदेश कुशलं शरणञ्च तेषाम् ।
विद्या निधिं सकल शास्त्र विचार दक्षः ॥ १ ॥

वन्दे गुरो ! तव विशोक विराग मूर्तिम् ।
या पातिमां कु वृजने पति तञ्च नित्यम् ॥
नस्यात् प्रभो ! यदि च ते करुणाऽवतारम् ।
कोमे दहे दघमनन्त महं न जाने ॥ २ ॥

ध्याये गुरो ! तव मुखाऽम्बुज ध्यानगम्यम् ।
ध्याने सदा विमल मङ्गल मोद दाता ॥
स्वामिन्नहो यदि च मां भव रूप सिन्धो—
र्नोद्धारयन्ति पद पङ्कज रेण वस्ते ॥ ३ ॥

कोऽन्यो ददाति हरि पाद तले सुरागम् ।
या चेऽहमस्व । तव पाद सरोज युग्मम् ॥
त्वं देहि भक्त जन पोषण योग्य दक्षे !
या चे सदा गुरुषु पाद सरोज भक्तिम् ॥

किं वर्ण यामि भगवन् तव रूप सौम्यम् ।
पापाग्निवार यति शुद्ध मतिं तनोति ॥
ध्याये पुनः विमल ! ते मुख पुण्डरीकम् ।
यन्मे ददाति हरि पाद तले सु भक्तिम् ॥

भूयो नमो चरण पङ्कज धूलिशोभाम् ।
या पापिना मवति घोर तरात् समुद्रात् ॥
मो पांतु मां चरण पङ्कज रेण वस्ते ।
येवै लशन्ति पद पङ्कज धूलि देशे ॥

धन्याश्चते जगति शोभन भाग्यवन्तः ।
येवै भजन्ति मनसा तव पाद पद्मम् ॥
ध्याये सदा तव गुरो ! पद पुण्डरोकम् ।
याम्यन्यकं शरणदम् भगवन् न जाने ॥

धन्यास्तुते सुजन मानव वंश मान्याः ।
येवै विदंति गुरु पाद तलाऽनुरागम् ॥
बन्दे गुरो ! चरण युग्म महं त्वदीयम् ।
यत्पातिमां सकल निन्दित दोष दुःखात् ॥ ८ ॥

एतत् प्रमोद विपिने रमणोऽभिधेयः ।
साकेत नाथ शरणेन मनोऽभिरामम् ॥
येवै पठन्ति सततं शुभ पदयमेनम् ।
तेषां मतिर्भवति निर्मल भाव युक्ता ॥ ९ ॥

इति गुर्वष्टकम् ।

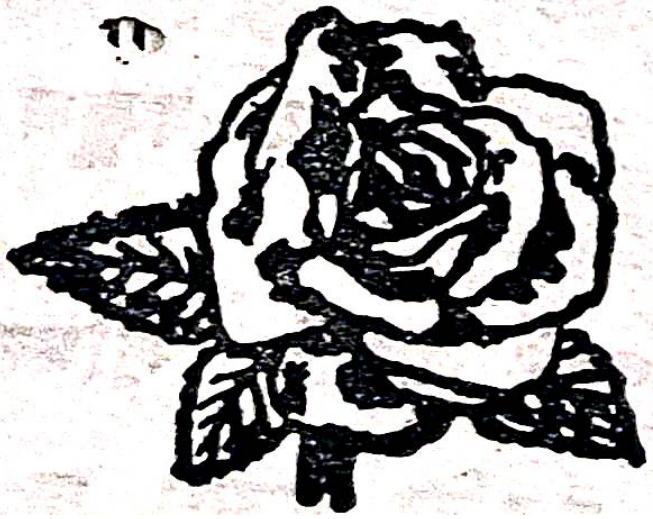

श्री वैष्णव प्रेस, दारागंज, प्रयाग।